SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

मानव शरीरः पंचकोश की अवधारणा

मंजू सिंह ठाकुर, पीएच–डी., योग विभाग
अग्रसेन महाविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत
सुनील कुमार मिश्रा, पीएच–डी., शारीरिक शिक्षा एवं योग विभाग
मैट्स युनिवर्सिटी, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors

मंजू सिंह ठाकुर, पीएच–डी.
सुनील कुमार मिश्रा, पीएच–डी.
E-mail : thakur.manju0108@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 18/01/2025
Revised on : 19/03/2025
Accepted on : 28/03/2025
Overall Similarity : 00% on 20/03/2025

शोध सार

पंचकोश विकास योग की अवधारणा है, जिसके अनुसार मनुष्य का अस्तित्व पांच हिस्सों में बंटा है, जिसे पंचकोश कहते हैं। इनके द्वारा चेतन, अवचेतन व अचेतन मन की अनुभूति होती है। सभी एक दूसरे से संबंधित हैं, और ये एक दूसरे का प्रभावित करते हैं। हमारा शरीर पंचकोशों से निर्मित है, पांच कोश या परतें आत्मा खोज की हमारी यात्रा के लिए एक रोड़ मैप के रूप में कार्य करती हैं। योग के विवेक द्वारा हम शरीर मन और आत्मा के तंत्र के बारे में जानते हैं, जिसे हम पंचकोश विवेक के नाम से भी जानते हैं हमारे अस्तित्व के पांच परतों का ज्ञान वेदांत मानव व्यक्तित्व को पांच परतों या पांच कोशों में विभक्त करता है।

मुख्य शब्द

पंचकोश, अनुभूति, विवेक, मानव, आत्म खोज.

पंचकोश निम्नांकित हैः

1. **अन्नमय कोशः** अन्न तथा भोजन से निर्मित यह स्थूल शरीर है, शरीर और मस्तिष्क।
2. **प्राणमय कोशः** क्रिया शक्ति, मन से बना।
3. **मनोमय कोशः** ईच्छाशक्ति, मन से बना।
4. **विज्ञानमय कोशः** विचार शक्ति, अर्न्तज्ञान या सहज ज्ञान से बना कोश।
5. **आनंदमय कोशः** व्यक्तित्व की अनुभूति अर्थात् आनंदानुभूति से बना।

हमारे पास जो कुछ साधन है, हम प्रत्येक कार्य उन्हीं साधनों से कर सकते हैं, जो हमारे पास नहीं है, वह हमारे किसी लक्ष्यपूर्ति का साधन नहीं हो सकता। हमारे पास ये पंचकोश है, अतः हमें इनको ही साधन बनाना होगा।

अन्नमयकोश

इस जगत में समस्त प्रकार के मनुष्य हैं। सभी की रूचि, सबके अधिकार, सबकी अर्हता भिन्न–भिन्न है। इनमें से जो देह में ही, दृढ़ अर्हता रखनेवाले अन्नमयकोश के अभिमानी है, उनकी चित्तशुद्धि का साधन अन्नमयकोश से प्रारम्भ होता है।

'अन्नं वै मनः'

'आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि'

तैत्तिरीयोपनिशद् के द्वितीय अनुवाद से हमें अन्न की महिमा का वर्णन मिलता हैं।

अन्नद्धि प्रजाः प्रजायन्ते। याः काक्ष पृथिवी श्रिता। अथो अन्नेनैव जीवन्ति अर्थनदपि यन्त्यन्ततः। अन्हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सोंषधमुच्येते। सव्र वै तेऽत्रमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रहतेपासते। अन्नहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सवौषध मुच्यते। अन्नद्भूतानि जायन्ते। जातान्चन्नेन वर्धन्ते। अद्यवेऽत्ति च भूतानि। तस्मादत्रं तदुच्यत इति।

इस मन्त्र में अन्न की महिमा का वर्णन किया गया है, तात्पर्य यह है कि इस पृथ्वीलोक में निवास करने वाले जितने भी प्राणी हें, वे सब अन्न से ही उत्पन्न हुए हैं, अन्न के परिणामस्वरूप रज और वीर्य से ही उनके शरीर बने हें, उत्पन्न होने के बाद, अन्न से ही उनका पालन पोषण होता है, अतः अन्न से ही वे जीते हैं। फिर अन्त में इस अन्न में ही अन्न उत्पन्न करने वाली पृथ्वी में ही विलीन हो जाते हैं, तात्पर्य यह कि समस्त प्राणियों के जन्म, जीवन और मरण स्थूल शरीर सम्बन्ध से ही होते हैं, और स्थूल शरीर अन्न से ही उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही जीते हैं, तथा अन्न के उद्गम स्थान पृथ्वी में ही विलीन हो जाते हैं। उन शरीरों में रहने वाले जो जीवात्मा है, वे अन्न में विलीन नहीं होते, वे तो मृत्युकाल में प्राणों के साथ इस शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में चले जाते हैं। जो लोक ''अन्न ही ब्रम्हा है'' इस प्रकार उपासना करते हैं, वे निश्चय ही सम्पूर्ण अन्न प्राप्त करते हैं। अन्न ही प्राणियों में बड़ा हे, इसलिए वह सवौषध कहलाता है। अन्न से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर अन्न से ही वृद्धि को प्राप्त होते हैं।[2]

इन सब दोषों से रहित आहार ही ग्रहण किया जो उस शुद्ध आहार से निर्मित मन शुद्ध होगा। इस प्रकार चित्त की शुद्धि हो जाएगी। यह अन्नमय कोश को लेकर चलने वाली साधना का मार्ग हुआ।

प्राणमय कोश

''प्राणं वै मनः''

''जैसा करो कर्म वैसा रहे मन''

''संस्कारात्मक चित्तम्''

जैसा कर्म किया जाता है चित्त पर उस कर्म का वैसा ही संस्कार पड़ता है, फिर वही संस्कार इच्छा के रूप में जागता है, और इच्छा के अनुसार कर्म होते हैं। ''प्राणं देवा अनु प्राणन्ति। मनुष्याः पशवश्च ये। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्तमात्सर्वायुषमुच्यते। सव्रमेव त आयुग्रन्ति ये प्राण ब्रतोपासते। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति। तस्यैष एव शरीर आत्मा य पूर्वस्य।[3]

अर्थात् देवगण प्राण के अनुगामी होकर प्राणन–क्रिया करते हैं तथा जो मनुष्य और पशु आदि है, वे भी प्राणन–क्रिया से ही चेष्टावान् होते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु (जीवन है।) इसीलिए वह 'सर्वायुष' कहलाता है। जो प्राण की ब्रम्हारूप से उपासना करते हैं, वे पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है इसीलिए वह सर्वायुष कहलाता है। इसी प्रकार कौषीतिकी उपनिषद् में एक श्रुति हैः

''यावद्यस्मिञ्शरीरे प्राणो वसति तावदायुः''[4]

अर्थात् जब तक इस शरीर में प्राण है, तभी तक आयु है। यदि हम अपनी पाप वासनाओं की बुरी प्रवृत्तियों को बल पूर्वक रोके रहे और उत्तम कर्म ही करें, कान से सत्संग की, भगवान की बात सुने, मुख से भगवान का नाम ले अच्छी बातें करें अर्थात् समस्त, इन्द्रियों से पवित्र कर्म ही करते रहें तो हमारे चित्त के गोदाम में जो बुरे संस्कार

है, ये नीचे दबते जाएँगे। वे उठने का अवसर ही नहीं पाएँगे और इन पुण्य संस्कारों से चित्त का मल – विक्षेप दूर हो जाएगा। इस प्रकार कम्र के द्वारा चित्तशुद्धि होगी। यह प्राणमय कोश को लेकर चलने वाली साधना क्रिया शक्ति का मार्ग है।

मनोमय कोश

''संकल्पतिकल्पातसं मनः''

मन का स्वभाव है संकल्प विकल्प करते रहना। इच्छा शक्ति या वासना से भिन्न उसका स्वरूप मिलता ही नहीं। अतः या तो वासना को शुद्ध करना चाहिए या वासना का निरोध करना चाहिए। इनमें से वासना शुद्धि का मार्ग है – उपासना मार्ग और वासना निरोध का मार्ग है – योग मार्ग।

'तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयदन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः तैनेष पूर्णः। सवा एष पुरूषविध एव। त्सय पुरूषविधतामन्वयं पुरूषविधः। तस्य यजुरेव शिरः। ऋग्दक्षिणः पक्षः सामोत्तरः पक्ष। आदेश आत्मा। अर्विाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति।

इस तृतीय अनुवादक के दूसरे अंश में मनोमय पुरूष का वर्णन किया गया है। भाव यह है कि पहले बताए हुए प्राणमय पुरूष से मित्र, उससे भी सूक्ष्म होने के कारण उसके भीतर रहने वाला दूसरा पुरूष है, उसका नाम है मनोमय। उस मनोमय से यह प्राणमय शरीर पूर्ण है, अर्थात् वह इस प्राणमय शरी में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। यह मनोमय शरीर भी पुरूष के ही आकार का है। प्राणमय पुरूष में अनुगत होने से ही यह मनोमय शरीर पुरूष के समान आकारवाला हैं उसकी पक्षी के रूप में इस प्रकार कल्पना की गयी है – उस मनोमय पुरूष का मानो यजुर्वेद ही सिर है, ऋग्वेद दाहिना पंख हे, सामवेद बायां पंख हे, आदेश मानो शरीर का मध्यभाग है तथा अथर्वा और अङ्गिरा ऋषियों द्वारा देखे हुए अथर्ववेद के मंत्र ही पूँछ और आधार है।

भगवान की बात सुनो, भगवान का नाम–गुण कीर्तन करो, भगवान की पूजा करो, भगवान के चरणों में मस्तक झुकाओं आदि जो शास्त्र के आदेश है, उनका तात्पर्य है कि मन से भगवान के ही नाम रूप–गुण–लीला के चिन्तन में लगाए रखो। मन के बल शुद्ध का चिन्तन करें, शुद्ध की भावना करे और शुद्ध तो भगवान ही है। इस प्रकार शुद्ध की निरन्तर भावना से चित्त स्वतः शुद्ध हो जाएगा। दूसरी विचारधारा यह है कि मन का क्या ठिकाना कि कब हाथ से बाहर हो जाए। यह कभी शुद्ध सोचेगा, कभी अशुद्ध। अतः सबसे उत्तम यह है कि उसे सोचने ही न दिया जाय।

''योश्चित्तवृत्तिनिरोधः''

चित्त की वृत्तियों को सर्वथा रोक देना ही योग है। यम–नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये सब चित्त की शुद्धि चित्तवृत्तियों का निरोध ही है। चाह इष्ट की भावना हो चाहे चित्तवृत्ति निरोध दोनों ही मनोमय कोश को इच्छा शक्ति को लेकर चलने वाली साधनाएँ है।

विज्ञानमय कोश

विचारशक्ति से चलने वाली साधना की बात थोड़ी टेढ़ी है। मन कोई वस्तु ही नहीं है। विषय की प्रतीति को ही मन कहते हैं। जगत अपने विचारों का ही प्रतिबिम्ब है।

'विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तुनतेऽपित च। विज्ञानं देयाः सर्वे। ब्रम्ह ज्येश्ठमुपासते! विज्ञाने ग्रस्त चेद्वेद। तस्माचेन प्रमाधति। शरीरे पाप्मनो हित्या। सर्वान्कामान्समश्नुत इति। तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य।[8]

अर्थात् विज्ञान (विज्ञानवान पुरूष) यज्ञ का विस्तार करता है, और वही कर्मों का भी विस्तार करता है। सम्पूर्ण देव ज्येष्ठ विज्ञान ब्रम्ह की उपासना करते हैं। यदि साधक विज्ञान ब्रम्ह है ऐसा जान जाय और फिर उससे प्रमाद न करें तो अपने शरीर के सारे पापों को त्यागकर वह समस्त कामनाओं (भोगों) को पूर्णतया प्राप्त कर लेता है। यह जो विज्ञानमय हे, वही उस अपने पूर्ववर्ती मनोमय शरीर की आत्मा है।

संसार और संसार के समस्त विषय दुःखरूप है। क्षणिक है, नश्वर है अथवा हैं ही नहीं। इनमें से कोई भी बात विचार के द्वारा बुद्धि में बैठ जाय तो संसार में जो राग–द्वेष है, वह निवृत्त हो जाएगा क्योंकि रस्सी में साँप भले ही प्रतीत होता रहे किन्तु जब जान लिया कि वह रस्सी है तब न डर लगेगा न उसे मारने को लाठी उठेगी। साँप में चाँदी भले दिखे किन्तु उसे साँप जान लेने पर लोभ स्वतः मर जायेगा। उसी प्रकार मिठाई में विष है, यह जान लेने मात्र से उसे खाने की इच्छा नष्ट हो जाती है। जो मुख से ऊँचे दर्शन की बात करते हैं किन्तु जिनके मन में वही राग–द्वेष है, उनकी बात में नहीं करता उन्होंने तो केवल पढ़ा हैं अपने निश्चय को वे स्वयं सत्य नहीं समझते और तब वे दम्भ करते हैं।

आनन्दमय कोश

''रसो वै सः'' यह श्रुति ने कहा है। इसमें भी रस की आनन्द की बात कह रहा हूँ, आनन्दमय कोष को अपने व्यक्तित्व की अनुभूति को उसको सम्बद्ध कर देने की बात।

''तस्माद्वा एतस्मादिज्ञानमयादन्योन्तर आत्मानन्दमय। तनैष पूर्णः। सवा एवं पुरूषविध एव। तस्य पुरूषविधतामन्वयं पुरूशविधः। तस्य प्रियमेव शिरः। मोदी दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः। आनन्द आत्मा। ब्रम्ह पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष शलोको भवति।[7]

पंच्चम अनुवाक के इस दूसरे अंश में आनन्दमय परमपुरूष का वर्णन किया गया है। भाव यह है कि पहले अंश में कहे हुए विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न उसके भी भीतर रहने वाला एक दूसरा आत्मा है वह है आनंदमय परमात्मा। उससे यह विज्ञानमय पुरूष व्याप्त है, अर्थात् वह इसमें भी परिपूर्ण है। आनंदमय परमात्मा सबके प्रिय हैं। समस्त प्राणी आनंद से प्रेम करते हैं, सभी आनंद को चाहते हैं परन्तु न जानने के कारण उन्हें पा नहीं सके। यह प्रियता, उन आनंदमय परमात्मा का एक प्रधान अंश है। अतः यही मानो उनका प्रधान अंग सिर हैं। मोह दहिना पंख, प्रमाद बायां पंख है, आनन्द ही परमात्मा का मध्य अंग है तथा स्वयं ब्रम्ह ही इनकी पूँछ एवं आधार है।

यह उपासना नहीं है, साधना नहीं है स्वभाव है। दास्य, सखा, वात्सल्य और माधुर्य ये उसके चार रूप है। इसकी को भक्ति कहते हैं। यह जो रस रूप हैं। परमानन्द धन मूर्ति है। हमारा कोई है हमारा अपना है। अपनत्य की यह अनुभूति जाग उठे मन में बस। चित्त शुद्धि की चर्चा यहाँ छूट गयी इसलिए छूट गयी कि अब हम अकेले नहीं है हम जो नहीं कर सकेंगे उसकी चिन्ता कर लेने वाला एक है और यह ऐसा कि उसके स्मरण से अशुद्धि की सत्ता तक समाप्त हो जाती है।

अपिचेदसिपापेभ्यः सर्वेभयः पापकृत्तमः।
सर्व ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।[6]

यह ज्ञान का माहात्मय गीता में है और उसी गीता में है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामन्यभाक
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग् व्यवसितो हि सतः।।
क्षित्रः भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति
कान्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।

दोनों में किंचित अन्तर है। वृजिनं संतरिष्यसि – वह स्वयं ज्ञान नौका के द्वारा समस्त ताप से पार हो जाएगा, किन्तु दूसरा तो अभी पार हुआ नहीं, किन्तु आप पूरे विश्व को अभी से सर्वेश्वर होकर आदेश दे रहे हैं।

जब शरीर त्रय का विचार किया जाता है, तब इन पंचकोशों तथा इनके कार्यों का तीन शरीरों में ही अन्तर्भाव हो जाता है। स्थूल शरीर अन्नमय कोश है। अतः आहार शुद्धि तथा शरीर से होने वाली क्रियाओं की शुद्धि का माध्यम है जिनमें स्थूल देह की आसक्ति प्रबल हैं, और जिनमें भावनाशक्ति तथा विचारशक्ति का उदय नहीं हुआ। उनके लिए हठयोग तथा निष्काम कर्मयोग सुगम पड़ सके ऐसे साधन है। वैसे साधन सब पवित्र है और सबके लिये लक्ष्य तक ले जाने वाले हैं।

निष्कर्ष

हमें परमात्मा ने पाँचों कोश एक साथ दिये हैं, अतः पाँचों का ही उपयोग अधिक बुद्धिमता होगी और इससे सुगमता भी अधिक होगी। अन्नमय कोश की स्थूल देह की शुद्धि के लिए आहार शुद्धि का ध्यान रखा जाय, प्राणशक्ति क्रियाशक्ति की शुद्धि के लिये शुद्ध कर्म ही किये जाए, जिससे प्राणमय कोश शुद्ध, पवित्र एवं भगवान के नाम रूप, गुण, लीलादि की ही भावना की जाय। विज्ञानमय वैराग्य के लिए जगत की दुःखरूपता एवं अनित्यता का बार–बार विचार किया जाय और आनन्दमय कोश व्यक्तित्व की शुद्धि के लिये अपने अहं को उस रस रूप से सम्बद्ध कर दिया जाय, उसे अपना बना लिया जाय, चित्तशुद्धि के लिए यह सम्यक् पञ्चांग शुद्ध होता है।

संदर्भ सूची

1. कल्याण वर्ष 34 अंक 3 मार्च 1860, पृ. 984।
2. तैत्तिरीयोपनिषदः 212, गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. तैत्तिरीयोपनिषदः 213, गीता प्रेस, गोरखपुर।
4. कौषीतिकी उपनिषद् 3/12, गीता प्रेस, गोरखपुर।
5. भारतीय दर्शनरू देवराज, नन्दकिशोर, पृ. 409, उ.प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ।
6. तैत्तिरीयोपनिषद् 214, गीता प्रेस गोरखपुर।
7. तैत्तिरीयोपनिषद् 215, गीता प्रेस, गोरखपुर।
8. श्रीमद्भगवद्गीता 10/30–31, गीता प्रेस गोरखपुर।

****